सितंबर १९९१ हिंदी पत्रिका में प्रकाशित

धम्मवाणी

सक्कत्वा सक्कतो होति गरु होति सगारवो।
वण्णकित्तिभतो होति यो मित्तानं न दूभति॥

स्त्रामणेर-विनय, मेत्तानिसंसं... ५.

पूजा करनेवालेकी पूजा होती है, वन्दना करनेवालेकी वन्दना होती है, यश और कीर्तिको प्राप्त होता है, जो कि मित्रों के साथ द्रोह नहीं करता।

आत्म कथन

ऐसे थे गुरुदेव

उच्च सैद्धान्तिक जीवन

केवल प्रशासकीय सेवा के दौरान ही नहीं बल्कि सारे जीवन उच्च सिद्धान्तों का ही जीवन जीते रहे सयाजी। इस बारे में किसी प्रकार का समझौता कर लेना उनके स्वभाव के सर्वथा विरुद्ध था। अनीतिपूर्ण माध्यमों से धनसंचित करना उनके लिए अशक्य था, असम्भव था। यही कारण था कि लम्बी प्रशासनिक सेवा से अवकाश प्राप्त करने के बाद वे लगभग अकिंचन ही थे।

क्रय-विक्रय का व्यवसाय करनेवाले किसी सरकारी निगम में चंद वर्षों के लिए भी कोई व्यक्ति उच्चाधिकारी नियुक्त हुआ तो समझो मालामाल हो गया और शेष जीवन के स्वच्छन्द गुजर बसर के लिए निश्चिंत हो गया। परंतु सयाजी ऊ बा खिन ने अवकाश प्राप्त करने पर देखा कि उनके पास कुल बचत पूंजी २५,००० च्याट् [रुपये] है और अपना कोई घर भी नहीं। कमरतोड़ महंगाई के दिनों में केवल सरकारी नौकरी पर निर्भर रहनेवाला व्यक्ति और बचा ही क्या सकता था? भले उन्होंने कभी कभी चार चार सरकारी विभागों के उच्च पदों पर एक साथ काम किया था पर वेतन केवल एक विभाग की ही लेते थे। ऐसे व्यक्ति के पास धन संग्रह कैसे होता भला?

वे अपनी बचत की इस छोटी सी रकम से संतुष्ट प्रसन्न थे। स्वयं तो उन दिनों आश्रम में ही रहने लगे थे। पर चाहते थे कि उनके बच्चों के लिए कोई छोटा सा घर बना दें। उन्होंने शीघ्र घर बना देने के लिए किसी कांट्रैक्टर की खोज की। मेरे जरिए मेरा एक मित्र कांट्रैक्टर कम से कम कीमत में दो कमरों वाला एक छोटासा कुटिया नुमा मकान बना देने के लिए तैयार हुआ। मकान बनना शुरू हुआ पर किन्हीं कारणों से देर होती गई और भवन निर्माण-सामग्रियों के दाम बढ़ते गए। देखा कि मकान पूरा करने में १०००० रुपये कम पड़ रहे हैं। यह रुपये कहांसे आएंगे? उनके पास और कोई अन्य संपत्ति भी नहीं, जिसे बेचकर इस कमी की पूर्ति की जा सके। वे किसीसे मांगेंगे भी नहीं। उन दिनों मेरे लिए यह रकम बहुत छोटी सी थी। दान देकर इसे चुका देना मेरे लिए बड़ा आसान था। मैंने बड़े विनीत भाव से गुरुजी के सामने यह प्रस्ताव रखा। परन्तु वे नट गए। एक साधक चाहे जितना दान दे सकता है परन्तु वह सब धर्म प्रसार के काम में ही लगे। उनके अपने रहने और भोजन आदि की व्यवस्था आश्रम में हो रही हो; यहां तक तो स्वीकार्य है। पर उनके परिवार के निवास अथवा भरण पोषण आदि का भार कोई साधक उठाए, यह उन्हें स्वीकार्य नहीं था। जबकि यह मकान तो उनके परिवार के लिए बन रहा था। एक आचार्य को अपने परिवार के लिए दान स्वीकार करना उन्हें अनुचित लगा। इसीलिए उन्होंने दृढ़तापूर्वक मेरा प्रस्ताव अस्वीकार किया। परंतु कांट्रैक्टर को पूरे पैसे मिले बिना काम पूरा होगा नहीं। काम अधूरा ही रह जाएगा। अतः मैंने पुनः विनीत भाव से दूसरा सुझाव दिया कि मैं यह रकम उन्हें कर्जे के रूप में दे दूं ताकि कान्ट्रैक्टर का बिल चुकाकर घर का काम पूरा करवाएं। मुझे प्रसन्नता हुई कि उन्होंने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। मैंने सोचा था कि कर्ज वापस लेने की बात टालता रहूंगा और फिर स्वतः ही भूली पड़ जाएगी।

पर ऊ बा खिन, ऊ बा खिन थे। जो भी छोटीसी रकम हर महीने पेन्शन के रूप में मिलती, वह पूरी की पूरी कर्ज उतारने के लिए मेरे हवाले कर देते। मैं बड़े पीड़ित मन से स्वीकार करता। मेरे लिए १०,००० की रकम कितनी मामूली थी और अपने गुरु को मिलनेवाली मामूली सी पेन्शन की वेतन मैं पूरी की पूरी लिए जा रहा था। उनके विपन्न परिवार को इसमें से एक 'च्याट' [बर्मी रुपया] भी नहीं जा रहा था। सारा परिवार उनके एक मात्र पुत्र के मासिक वेतन पर पल रहा था। यह स्थिति मेरे लिए पीड़ाजनक थी। पर लाचारी थी। कुछ समय बीता और यह कर्ज यूं चुकता होते होते आधा चुक गया। अब केवल पांच हजार ही देने बचे।

उसी समय मुझे दत्तक पुत्र के रूप में गोद लेने वाली मेरी ताई मां बीमार पड़ी और मरणासन्न हुई। वृद्ध माता का सम्मानपूर्वक पोषण करना, बीमार पड़े तो उचित दवादारू करना यह पुत्र का धर्म है और वह मैं प्रसन्नतापूर्वक निभा ही रहा था। परंतु पुरानी परंपरा के अनुसार उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके श्राद्ध स्वरूप दान देना भी पुत्र-धर्म था। मैंने सोचा, मरने के पश्चात् दान देने से अच्छा है माता की जीवित अवस्था में ही उसकी इच्छानुसार उसी के हाथों दान दिलवा दिया जाय। मुझे लगा यही अधिक उत्तम है। मैंने बीमार मां के सम्मुख यह प्रस्ताव रखा तो उसने मेरे ही सुझाव पर ८-१० स्थानीय सार्वजनीन संस्थाओं को दान देने की स्वीकृति दी और जब पूछा कि किसी व्यक्ति विशेष को भी दान देना चाहती हो तो उसने इच्छा प्रगट की कि परम पूज्य गुरुदेव को ५००० रुपयों का दान दिया जाय।

मैं बड़ा प्रसन्न हुआ। मैं जानता था कि पूज्य गुरुदेव को ताई मां से बड़ा स्नेह है। पिछले सात वर्षों से वह गंभीरतापूर्वक साधना में रत रहती थी। जीवनभर जिन कर्मकाण्डोंमें, व्रत उपवासों में, भजन कीर्तन में लगी हुई थी उन सब को सहर्ष त्यागकर अब विपश्यना की मुक्तिवाहिनी धर्मधारा में प्रसन्न चित्त से निमग्न हो गयी थी। गुरुदेव किसी साधक से अपने लिए दान नहीं लेते। परंतु अपनी इस

परमशिष्या बूढ़ी मां [इसी नाम से गुरुदेव उसे पुकारा करते थे।] की अंतिम धर्म-इच्छा को वे नहीं टालेंगे। और सचमुच मुस्कराते हुए उन्होंने यह दान स्वीकार कर लिया और पुण्यानुमोदन करते हुए बूढ़ी मां के मंगलार्थ तीन बार साधु, साधु, साधु कहा।

मैं प्रसन्न हुआ। अब इस रकम से वे अपना कर्ज चुका देंगे और हर महीने उनकी पेन्शन की रकम लेते हुए मुझे जो पीड़ा होती है उससे मुक्ति मिलेगी। लेकिन मेरी यह आशा फलीभूत नहीं हुई।

गुरुजी ने सभी साधकों के बीच बूढ़ी मां की भूरि भूरि प्रशंसा की। वह उसके प्राण त्यागने के समय स्वयं उपस्थित थे। उन्होंने लोगों को बताया कि कैंसर की असह्य पीड़ा से पीड़ित होते हुए भी कैसे सजग शांत चित्त से अनित्य बोध के साथ उस साध्वी ने अपने प्राण त्यागे और बताया कि वह कितनी उदारचेता थी। देखो! यह पांच हजार रुपयों का दान विशेष रूप से मेरे लिए दिया और यूं कहते हुए पास बैठे आश्रम के सचिव को यह रकम थमाते हुए आदेश दिया कि इसमें से इतनी रकम इस शुभ कार्य में, इतनी इसमें, इतनी इसमें, यूं दो मिनिटों में पूरे पांच हजार शुभ कार्यों में बांट दिए।

मैं अवाक् देखता रह गया और वह हर महीने अपना ऋण चुकाते रहे, चुकाते रहे, जब तक कि पूरा न हो गया। धर्म सिद्धान्तों पर दृढ़तापूर्वक आरूढ़ धर्मपुरुष ऐसे ही होते हैं।

शासन सत्ता के इतने समीप रहते हुए भी उन्होंने उसका किंचित् मात्र भी दुरुपयोग नहीं किया। काजल की कोठरी में निवास करते हुए भी उनके चरित्र पर जरा सी कालस नहीं लगी। अनेक धनवानों के सद्गुरु होते हुए भी उन्होंने धर्म-शिक्षण के नाम पर कोई गुरुडम नहीं फैलने दिया। धर्म के नाम पर किसी शिष्य का रंच मात्र भी शोषण नहीं किया।

बिरले ही होते हैं ऐसे निःसंग, निस्पृह, निरासक्त सद्गुरु। उन्हें शत् शत् प्रणाम!

धर्मपुत्र,

स. ना. गो.

आत्म कथन

ऐसे थे गुरुदेव

अपने सिद्धान्तों पर अविचल

किसी स्वार्थी व्यापारी से अनुलोम या प्रतिलोम किसी प्रकार की भी रिश्वत लेना तो दर किनार, सयाजी अपने मातहत काम करने वालों से भी कोई छोटी-मोटी भेंटपूजा तक नहीं स्वीकारते थे; ताकि कोई उन्हें किसी प्रकार भी प्रभावित करने का प्रयत्न न करे।

अक्सर सरकारी कर्मचारी अपने वरिष्ठ अधिकारियों को किसी न किसी बहाने कोई छोटी मोटी भेंट देते रहते थे, ताकि उनकी कृपा-दृष्टि बनी रहे। प्रमोशन के समय उन्हें याद कर लें अथवा कभी कोई भूल हो जाए तो उन पर कोई कठोर कार्यवाही न करें।

ऐसे उपहार की सयाजी ने कड़ी मनाई कर रखी थी। परंतु एक बार उनकी अनुपस्थिति में एक कर्मचारी उनके घर पर एक रेशमी लुंगी का उपहार छोड़ आया। सयाजी दूसरे दिन इस उपहार को S.A.M.B की ऑफिस में ले आए। छुट्टी के बाद सारे कर्मचारियों को एकत्र किया और अपने आदेशों का पालन न करनेवाले उस कर्मचारी को सबके सामने लताड़ा। वह लुंगी उसी सभा में नीलाम कराई। उसकी कुल आमदनी कर्मचारी कल्याणकोष में जमा करा दी गई। उपहार देनेवाले कर्मचारी पर मानो सौ घड़े पानी डाल दिया गया। शरम के मारे उसका बुरा हाल था।

ऐसा ही बुरा हाल एक अन्य कर्मचारी का हुआ जो कि उनके यहां उपहार स्वरूप एक फल की टोकरी छोड़ आया था।

उस संत पुरुष के लिए इस प्रकार का कठोर व्यवहार करना नितांत आवश्यक था क्योंकि उन्हें उस बोर्ड में फैली हुई अनियमितताओं, दुर्व्यवस्थाओं और पक्षपातपूर्ण व्यवहारों को आमूलचूल बदलना था।

इसके साथ-साथ स्वयं अपनी सत्यनिष्ठा का भी सवाल था। किसी सरकारी पद पर रहकर उसका किंचित् मात्र भी लाभ उठाना उनके लिए सर्वथा असह्य था, अस्वीकार्य था।

सयाजी सिद्धान्तों के पक्के थे। उनके पालन करने में सदा सजग रहते थे। नैतिक सिद्धान्तों से उन्हें कोई नहीं डिगा सकता था। वे एक आदर्श शासनाधिकारी का जीवन जीना चाहते थे और अपने सुदृढ़ मनोबल, त्याग और सादगीभरी जीवनचर्या के कारण ऐसा कर भी पाए। ऐसा करते हुए अनेक बार उन्हें अपने समय की प्रचलित शासकीय प्रथाओं के विरुद्ध काम करना पड़ा, जिसने कि कई बार अनेक अप्रिय परिस्थितियां पैदा कर दीं। परंतु उनके लिए तो शुद्ध निष्कलंक जीवन जीना अधिक महत्त्वपूर्ण था, और सारी बातें गौण थीं।

धर्मपुत्र,

स. ना. गो.